तीन संदेश

आचार्य श्री तुलसी

प्रकाशक

आदर्श - साहित्य - संघ

सरदारशहर (राजस्थान)

२४ अगहन ४३

द्वितीयावृत्ति—२५०
मूल्य—छः आना

मुद्रक
रैपिड आर्ट प्रेस
(भारत-साहित्य संघ द्वारा संचालित)
३१, बांसतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।

आदर्श-राज्य

[ता० २.३.४७ को दिल्ली में पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में आयोजित एशियाई कान्फ्रेंस के अवसर पर]

आदर्श राज्य

मैं विश्वास करता हूं कि यह मेरी सन्देश-वाणी अन्तर-एशियाई सम्मेलनमें सम्मिलित होनेवाले भारतीय और अभारतीय सज्जनोंके कानों तक पहुंचेगी। मैं अनुमान करता हूं कि यह पहला ही स्वर्णावसर है, जबकि हिन्दुस्तानमें समस्त एशिया एवं अन्यान्य देशोंके भिन्न भिन्न आचार विचार-युक्त एवं भिन्न भिन्न भाषाभाषी प्रेक्षक और प्रतिनिधियों का इस रूपमें समारोह हुआ है। इसके आमन्त्रयिता भारतकी अन्तर-कालीन राष्ट्रीय सरकारके उपाध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू हैं। इस सम्मेलनको बुलानेका उद्देश्य यही हो सकता है कि इस सम्मेलनके अवसर पर एशियासम्बन्धी समस्याओंकी समालोचना, संस्कृति विषयक एवं साहित्य विषयक अन्वेषण एवं परस्पर गाढ़ सम्बन्ध स्थापित किए जायें। इस मौके पर एक भारतीय धार्मिक संस्थाका प्रमुख होनेके नाते मैं चाहता हूं कि सम्मेलनमें एकत्रित विद्वानोंको एक सम्मति दूं और आशा है कि यह सबके हृदयमें अङ्कित होगी।

जहाँ कहीं जो कोइ समस्या विषम बन जाये तो उसके अतस्तत्त्व को ढूँढ निकालोकी चेष्टा करना, उसको सुलझानेका सबसे सरल उपाय है। राष्ट्रके भाग्य विधाताओंने वर्तमान परिस्थितिको सरल करनेके लिए जिन २ कारणोंका अन्वषण किया है, उनमें वह प्रमुख कारण भी उनकी नजरमें आ गया हो—इस पर मुझे सदह है और वह कारण एसा है कि उसका अन्वषण किये बिना और और अन्वषित कारण इष्ट कार्यकी सिद्धिके लिए समर्थ हो सकेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। अब तक जिस शान्तिके उपायकी ओर ध्यान नहीं दिया गया, वह है अध्यात्मवादकी ओर जानेवाली उदासीनता। अध्यात्मवादके सिवाय लालसाको सीमित करनेका और कोइ भी समर्थ उपाय नहीं है। लालसाकी कहीं भी इयत्ता नहीं, वह अनन्त है। जैसा कि भगवान् महावीरने फरमाया है—हिमालयके समान बड़े-बड़े असंख्य चाँदी-सोनेके पहाड हाथ लग जाय तो भी लालची मनुष्य उससे जरा भी तृप्त नहीं होता चूंकि मानसी तृष्णा आकाशके समान अनन्त है। जब तक सब लोग स्वतन्त्र हृदयसे लालसाका अवरोध न करेंगे तब तक व समाज-वादका समर्थन करनेवाले हो, चाहे साम्यवादका सम्मान करने वाले हो, चाहे जनतन्त्रकी मन्त्रणा रखनेवाले हो, चाहे और और मनोवांछित वाद विवादकी कल्पना करनेवाल हो, वह अमन चैन की कामनाको सफल नहीं बना सकते। इसलिए अध्यात्मवादकी ओर निगाह डालना सबसे अधिक आवश्यक है।

अध्यात्मवादको भुलाकर केवल भौतिकवादकी ओर दौडनेवाल

इसीलिये साम्प्रतिक दुष्परिणामको निहार कर भी जगतकी आँख नहीं खुली, यह आश्चर्यकी बात है। वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत आणविक बम आदि महाप्रलयकारी अस्त्रोंने विश्व-शांतिको अशांति के गहरे गड्ढेमें ढकेल दिया। क्या यह भौतिकवादकी विडम्बना नहीं? विश्वव्यापी महायुद्ध-जनित खाद्य पेय-परिधानीय (रोटी-कपड़े) वस्तुओंकी महान् कमीके कारण भारतमें लाखों मनुष्य विलखते हुए एक दयनीय पुकारके साथ कालकवलित हुए। क्या भौतिकवाद अपनेको इस लाञ्छनासे बचा सकता है? भारतमें बम्बई, पंजाब आदि प्रान्त, एवं चीन पैलेस्टाइन आदि देशोंमें जिस अमानुषिक वृत्तिका आचरण किया गया और अब भी पग पग पर उभरते हुए साम्प्रदायिक कलह दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इन सबका मुख्य कारण जहाँतक मेरा अनुमान है, अध्यात्मवादके महत्त्वको न समझना एवं न अपनाना ही है। हम आत्मविश्वासके साथ यह निश्चित घोषणा कर सकते हैं कि जब तक लोगोंमें आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न न होगी, तब तक विषम स्थितियोंका अन्त करना असम्भव नहीं तो असम्भवप्राय रहेगा। अतएव जनसाधारण में उसकी रुचि पैदा करनेकी आवश्यकता है। राष्ट्रके प्रमुख नेता इस दिशामें प्रयत्न करें, ध्यान दें तो साधारण लोगोंका इस ओर सहज झुकाव हो सकता है। अध्यात्मवादका प्राणभूत सिद्धान्त धर्म है। बहुसंख्यक राष्ट्रीय विचारवाले व्यक्तियोंका धर्मसे न जाने इतना विरोध और इतना भय क्यों है? धर्म राष्ट्रोन्नति, सामाजिक उत्थान और स्वतन्त्रतामें बाधा डालनेवाला नहीं।

हालांकि धर्मके नामपर अनेक अधमाचरण किये जा रहे है। स्वार्थ लोलुपताका उत्कर्ष हो रहा है। बाह्याडम्बर, देवालय, देवाराधनादि ही धर्मके प्रतीक बन रहे है। भीषण-भीषण कलह भडक रहे है और इन्हीं सब कारणोंसे धर्मके प्रति लोगोंकी घृणा है। अतएव दूधका जला छाछको फूक फूक कर पिये, यह अस्वाभाविक नहीं। आजकी दुनियाकी ठीक यही दशा है। धर्म वचनासे त्रस्त लोग आज धर्मकी असलियतसे सदिग्ध बन रहे है, मुह चुराना चाहते है। परन्तु उन लोगोसे मै आग्रह करता हू कि व एसा न करें। शुद्ध धर्म अवहेलना करने योग्य नहीं, किन्तु आदर करने योग्य है। उदाहरणस्वरूप धर्मके विशुद्ध नियम जिनका भगवान् महावीरने उपदेश किया था और जैन सस्कृतिमे जिनका अवतरण हुआ था, वह केवल आत्म विकास, एव पारलौकिक शांतिके ही साधन नहीं अपितु ऐहिक लाभ एव शांतिके भी असाधारण प्रतीक है। उनमे अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, और आत्म-नियत्रण विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। अहिंसा धर्मसे जैसी पारस्परिक मैत्री होती है, वैसी अन्य किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकती। अहिंसासे प्रलयकारी कलह विलीन हो जाते है। देश और राष्ट्रमे चिरस्थायी शांति करनेमे अहिंसा ही समर्थ है। अपरिग्रहवादसे समाजवाद आदि वादोंके सब स्वप्न साकार हो सकते है। आत्म नियत्रणसे क्षमा, सहनशीलता, नम्रतादि सद्गुण विकास पाते है। उससे पारस्परिक ईर्ष्या सहज ही म क्षीण हो जाती है। इन नियमोंके पालनेसे जो लाभ होता है, वह प्रत्यक्ष है। हाथ कङ्गनको

आरसी क्या ? आज जो हिन्दुस्तान स्वतन्त्रताके द्वार पर है, यह अहिंसाका माहात्म्य नहीं तो किसका है ? इतना बड़ा विशाल राष्ट्र इस प्रकार कोई भीषण नर-संहार किए बिना एवं खून बहाए बिना सदियोंकी परतन्त्रतासे मुक्त हो रहा है, क्या यह एक अभूतपूर्व, अदृष्ट एवं अश्रुतपूर्व घटना नहीं ? पर अहिंसा देवीकी अपार महिमाके सामने यह कुछ भी नहीं। यह तो केवल भौतिक मुक्ति है। यह तो आत्ममुक्ति करने की क्षमता रखती है। अहिंसाके इस साक्षात् फलको देखकर अहिंसा धर्म में रुचि बढ़ानी चाहिये। अध्यात्मवादके मार्गका अवलोकन करना चाहिये।

सब लोग स्वतन्त्रता और स्वराज्यके इच्छुक हैं। इनको पानेके लिए यत्नशील हैं। पर उन्हें सोचना चाहिये कि सौराज्यको पाये बिना स्वराज्यसे कुछ नहीं बनता। वस्तुतः सौराज्य ही स्वराज्य है। सौराज्यकी परिभाषा निम्न प्रकार है—

(१) सौराज्य यह है कि देशवासी लोग अपने अपने शुद्ध धर्माचरणमें पूर्ण स्वतन्त्रताका अनुभव करें।

(२) सौराज्यका यह अर्थ है कि लोगोंके आपसी झगड़ोंका अंत होजाये।

(३) सौराज्यका अर्थ है कि देशवासी जन हिंसक, असत्यवादी, चोर, व्यभिचारी, अर्थ-संग्रहके लोलुप, दाम्भिक, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले एवं दूसरेकी उन्नति पर जलनेवाले न हों।

(४) सौराज्य यह है कि सदाचारी, अध्यात्मवादके प्रचारक,

पारमार्थिक उपकारके करनेवाले, दुराचारसे भय खानेवाले साधु पुरुषोंका आदर हो।

(५) सौराज्यका अर्थ यह है कि धर्मके नाम पर ठगनेवाले, धर्माडम्बरके द्वारा अत्याचार फैलानेवाले विचारोंका प्रचार न हो।

(६) सौराज्यका अर्थ है कि राजकर्मचारियों एवं व्यापारियोंकी नीति शोषण करनेवाली न रहे।

(७) सौराज्य वह है जिसमें एक दूसरेके प्रति घृणा फैलानेकी चेष्टा न की जाय।

(८) सौराज्यका अर्थ है—लोग स्वच्छन्द न बनें, गुरुजनोंका अविनय न किया जाय। अन्यायका आचरण न किया जाय। कोई किसीके द्वारा तिरस्कारकी दृष्टिसे न देखा जाय।

(९) सौराज्यका अर्थ है—जिसमें धर्मानुकूल अधिकार सबके समान रहें। अमुक २ जातिसे—कुलसे—ऐश्वर्यसे महान् हैं अतः व धर्मके अधिकारी हैं; अमुक अमुक जाति कुल ऐश्वर्यसे हीन हैं, अतः व धर्मके अधिकारी नहीं हैं—ऐसी भावनाका अन्त हो जाय।

उक्त संस्कृतिका अनुसरण करनेवाला राज्य ही सौराज्य हो सकता है। ऋषभदेवके शासनकालीन सौराज्यका एक कविने जो चित्र खींचा है, वह अनूठा एवं आदर्श है। वह इस प्रकार है—ऋषभदेवके सौराज्यमें सजातीय भय—जैसे मनुष्यको मनुष्यसे होनेवाला भय, विजातीय भय—जैसे मनुष्योंको पशुओंसे होने-

वाला भय, धनकी रक्षाके लिये होनेवाला भय, आकस्मिक भय, आजीविका भय, मृत्युका भय, अकीर्ति भय, यह सात प्रकार का भय न था। (२) चूहे आदि क्षुद्र जीवोंके उपद्रव, प्लेग आदि सामूहिक रोग, अति वर्षा, अवर्षा, अकाल, स्वराष्ट्रभय, और परराष्ट्र-भय इत्यादि आतंककारी वातावरणका अभाव था। (३) जुआ, मांस भक्षण, मद्यपान, वेश्यागमन, परस्त्री-गमन, चोरी और मूक पशु पक्षियोंकी निर्मम हत्या—शिकार, इन सात महा दोषोंसे लोग घृणा किया करते थे। (४) कुल-वधू अपनी सासका, पुत्र स्वपिताका, पत्नी अपने पतिका, सेना अपने सेनानीका, शिष्य अपने गुरुका अविनय नहीं करते थे। (५) अपने बूढ़े मां-बाप, छोटे भाई-बहिन, बालक बालिकाएं, अतिथि, निराश्रित नौकर-नौकरानियोंको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन नहीं करते थे। (६) उस सौराज्यमें दुर्जनकृत तिरस्कार, स्त्री-पुरुषोंके दुराचार, अकाल-मृत्यु, धनका नाश आदि २ कारणोंसे लोग आंसू नहीं बहाते थे। (७) उस सौराज्यकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें एक भी भिखमंगा नहीं था—रोटी कपड़ेका भूखा नहीं था। (८) भिन्न २ आचार विचारवाले मनुष्य भी आपसमें वैर विरोध नहीं रखते थे। इस प्रकार के सौभाग्यकी स्थितिको पाकर ही लोग यह कह सकते हैं कि हमें स्वराज्य मिल गया। अन्यथा स्वराज्य और पराराज्यमें अन्तर ही क्या? अन्ततोगत्वा एक बार फिर मैं सबसे अनुरोध करता हूं कि इस नवयुगके निर्माणमें, राष्ट्र-व्यवस्थाके विधानमें, स्वराज्य

की प्राप्तिमें अध्यात्मवादको नहीं भुला देना चाहिये। भारत-वासियोंसे तो मेरा विशेष अनुरोध है।

चूकि अध्यात्मवाद भारतीय जन एव भारत भूमिका प्राण है। भारतीय सस्कृति धर्म प्रधान है। अनेको अध्यात्म-शिरोमणि महात्माओंने अवतार धारण कर इस भारत भूमिको पवित्र किया था। अब भी अनेक तपस्वीमूर्धन्य मुनिजन भारतकी पुण्य भूमिमें परोपकार कर रहे हैं—अध्यात्मवादके द्वारा जनताको सुखका प्रशस्त पथ दिखला रहे है। अतएव किसी विदेश-विशेषकी धर्मविरोधी नीतिको निहार कर अपने पूर्वजोंकी, अपनी एव अपनी मातृभूमिकी महत्त्वशालिनी—सुखद सस्कृतिको नहीं भुलाना चाहिए और न उसके विषयमे उदासीन ही रहना चाहिए। यही मेरा आवेदन है। स्यात् पुनरुक्ति न होगी, यदि पूर्व पक्तियोंके मौलिक विचार सूत्रबद्ध कर दिये जाय —

१—राजनैतिक निर्माणमें भी अध्यात्मवादका अनुसरण करना चाहिए।

२—अध्यात्मवादके प्राणभूत धर्मकी निरन्तर उपासना करनी चाहिए।

३—अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, आत्मनियन्त्रण आदि धार्मिक नियमोंकी ओरसे उदासीन नहीं रहना चाहिए। उनको हर समय याद करना आवश्यक है।

४—व्यक्तिगत, जातिगत, समाजगत एव राष्ट्रगत आक्षेप नहीं करना चाहिए।

५—व्यक्ति, जाति, समाज आदिके बीच होनेवाले वैमनस्य विरोध और विषमताके कारणोंको खोजना चाहिए और उनका अध्यात्मवादके द्वारा प्रतिकार करना चाहिए।

६—समाचार-पत्र सम्पादकों, राजनैतिक नेताओं एवं धर्म गुरुओंको भी वैसा प्रचार नहीं करना चाहिए, जिससे साम्प्रदायिक कलहको प्रोत्साहन मिले।

७—शिक्षाका मुख्य उद्देश्य आत्म विकास होना चाहिए। उसमें भी आत्म नियन्त्रणकी मुख्यता रखी जानी चाहिए।

८—पारस्परिक विचारोंकी विषमता होनेपर भी घृणा फैलानेकी नीतिको नहीं अपनाना चाहिए।

९—धर्मके नाम पर अधर्माचरणका प्रचार न हो और अधर्माचरणकी सहायताके साथ धार्मिक स्थानोंको बाधा न पहुंचे वैसा प्रयत्न होना चाहिए।

१०—वर्ण, जाति, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि भावसे किसीका भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए, घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए।

११—सौराज्यके बिना स्वराज्यकी कोई कीमत नहीं, इसकी वास्तविकताको हर पल कूतना चाहिए।

इस प्रकार सामूहिक सद्भावनाके आधार पर व्यक्ति और समष्टि सबके हितोंका निर्माण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

धर्म-संदेश

[हिन्दी तत्त्व ज्ञान प्रचा
रक-समिति अहमदाबाद
द्वारा ता ११ ३ ४७
को आयोजित धर्म परि
षद् के अवसर पर]

जरा जाव न पीडेइ, वाहि जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥

भगवान् महावीरने धर्मको सबसे अधिक आवश्यक जानकर ही इस प्रकार उपदेश किया था कि जबतक बुढ़ापा न आये, शरीरमें रोग न बढ़े, इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण न पड़े, उससे पहले ही धर्म करनेको सावधान हो जाना चाहिए। इस उपदेश गाथाका माल्यकुसुमकी भांति जनताने स्वागत किया, अपने जीवनको धार्मिक बनाकर संसार-सिन्धुसे तरनेमें समर्थ हुई—कष्ट परम्परासे छुटकारा पाया। आज भी अनेक पुरुष उस दुःख परम्पराके पार पहुंचनेकी तैयारी कर रहे हैं। परन्तु समयकी विचित्रतासे ऐसे व्यक्ति भी प्रचुर मात्रामें होते जा रहे हैं, जो धर्मकी मौलिकता एवं महत्ताको मूलसे ही नहीं पहचान रहे हैं, और धर्मको निरन्तर-उन्नतिमें बाधा डालने वाला मान रहे हैं। उनकी वाणी में, लेखनी में, प्रचार में, कार्योंमें एक ही लक्ष्य रहता है कि "ज्यों त्यों धर्मका अन्त हो जाये—धर्मका अस्तित्व मिटाकर ही हम सुखकी सांस ले सकते

हैं।" यद्यपि इस प्रकारके नि सार विचार आर्य्य भूमि एव आर्य्य-सस्कृतिमे टिक नहीं सकते, जल बुद्बुदकी तरह निलविला जाते है। तथापि वे वैसा किये बिना नहीं रहते—मनके मोदक खाये बिना नहीं रहते। इस स्थितिमे भी यह अत्यन्त हर्षका विषय है कि धर्मकी जडको मजबूत करनेके लिए जगह-जगह पर धार्मिक सम्मेलन आयोजित किए जा रहे हैं। धर्मकी असलियत पर लोगोंका उत्साह बढ रहा है। थोड़ समय पहले ही (मार्च महीनेमे) दिल्लीमे 'सत्यान्वेषक समिति' ने 'विश्व-धर्म सम्मेलन' का आयोजन किया था और अब उसके निकट ही 'हिन्दी तत्व ज्ञान प्रचारक-समिति' द्वारा सयोजित धार्मिक समारोह अहमदाबादमे होने जा रहा है। इस अवसर के लिए मैं एक जैन सस्थाके मुख्य आदर्शोंको सामने रखते हुए धर्म विषय पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं।

मैं धमके प्रचारार्थ किये जानेवाले निरवद्य प्रयत्नोंकी भूरि-भूरि प्रशसा करता हूं और इसके साथ साथ सलाह देता हू कि सिर्फ धार्मिक पुरुषोंका सम्मेलन एव उनकी सम्मतियोंका एकीकरण ही धर्म-वृद्धि, धर्म रक्षा एव प्रचारके पर्याप्त साधन नहीं, प्रत्युत इसके साथ-साथ धर्मकी मौलिकता, असलियत एव उपयोगिताका परीक्षण होना चाहिए प्रत्येक मनुष्यके हृदयमे धर्म तत्त्वको जचा देना चाहिए और ऐसी खूबीके साथ श्रद्धा पैदा कर देनी चाहिए, जिससे समूची दुनिया धर्मकी आवश्यकता एव उपयोगिता महसूस कर सके। इस प्रकारके कार्य एसे सम्मेलनोंके अवसर पर

किये जायगे, तभी हम गौरवके साथ कह सकेंगे कि धार्मिक सम्मेलनके उद्देश्य आज सफल होने जा रहे हैं और ये प्रयास सर्वाङ्गीण सफल हो रहे है।

धर्मके महान् आदर्शोंको देखकर एक ओर लोग उसमें आकृष्ट होते हैं तो दूसरी ओर भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंको देखकर उससे भय खाने लग जाते हैं और यहाँ तक कि समूचे धर्मसे ही विमुख बन जाते हैं। परन्तु सच तो यह है कि धर्ममें अनेकता यानी विरोध है ही नहीं। जो विरोध झलकता है, वह सब स्वार्थका युद्ध है। धर्मका उद्देश्य जीवनको विकसित करना है अत वह सब जगह सबके लिए एक है। यह अहिंसा हमारी और यह तुम्हारी, इस प्रकारका भेद धर्ममें कदापि नहीं हो सकता। यह नियम धर्मके प्रत्येक अवयव पर लागू होता है। धर्म रूढ़ि नहीं, किन्तु वास्तविक सत्य है। धर्म प्रत्येक व्यक्तिके लिए अभिन्न है। धर्मका अस्तित्व मैत्राम है और उसके लिए ही लोग आपसमें कलह करें, क्या यह धर्मका उपहास नहीं ? क्या यह अचम्भेकी बात नहीं है कि जो धर्म एक दिन स्वार्थके द्वारा होनेवाले झगड़ों का निपटारा करता था, उसी धर्मके लिए आज लोग आपसमें लड़ रहे हैं। यह एक महान् दुःखकी बात है। आजका धर्म-प्रेमी नागरिक यदि धर्मके द्वारा स्वार्थजन्य संघर्षोंको न रोक सके तो कमसे कम उसके नाम पर विरोधका प्रचार तो न करे, उसकी महिमा न बढ़ा सके तो कमसे कम उसे घटाया तो न करे।

सहिष्णुता एवं क्षमा धर्मके मूल गुणोंमें से है। परन्तु खेद है कि आजकी दुनियां इस ओर सर्वथा उदासीन है। जबतक सहनशीलता एवं क्षमाकी भावना न आ जाए तब तक शान्ति कैसे सम्भव है? क्षमाशील व्यक्ति सब जगह समर्थ व सफल होते हैं। इस प्रसगमें एक जैनाचार्यका उदाहरण सर्वसाधारणके लिए अधिक उपादेय है। जिसमें हम सहनशीलताकी वास्तविकता पा सकते हैं। जिन्होने भांति २ के कष्ट एवं मत विरोध सहकर भी एक आदर्श साधु-संस्थाकी स्थापना की। उन महान क्रांतिकारी एवं नव जागृतिके प्रसारक महापुरुषका नाम था—आचार्य श्रीमद् भिक्षु स्वामी और उस आदर्श संस्थाका नाम है श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ, और यह संस्था अबतक उसी लक्ष्य पर डटी हुई आज भी धर्म प्रचारका कार्य कर रही है। इसका उद्देश्य दुनियाके सामने जैन धर्मके पुनीत एवं मंगलमय आदर्शोंको रख जनताके जीवन-स्तरको उन्नत बनाना एवं विश्वमें शान्ति-प्रसार करना है। इस संस्थाने आज पर्यन्त किसी भी व्यक्ति, जाति एवं धर्म पर आक्षेप नहीं किया। इसका काम लोगोंके सामने अपने अभिमत सिद्धान्तोंको रखना ही रहा है। उनको यदि कोई माने तो उसकी इच्छा है और न माने तो उसके लिए कोई बल प्रयोग नहीं। क्योंकि धर्मका आचरण स्वतन्त्र हृदयसे हो सकता है, हठसे नहीं। इस महर्षिने भगवान् महावीरकी वाणी को दुहरा कर यह घोषणाकी थी कि धर्म और जबरदस्तीका कोई सम्बन्ध नहीं है। जहां कहीं अन्यायको मिटानेके लिए बल-

प्रयोग किया जाता है, वह राजनीति है, धर्म नहीं। धर्म सत्य उपदेशकी अपेक्षा रखता है, विवशताकी नहीं। जहां कोई मनुष्य अधार्मिकको भी विवश करके धार्मिक बनानेकी चेष्टा करता है, वह भी धर्म नहीं। चूंकि जहां विवशता है, वहां स्पष्ट हिंसा है और जहां हिंसा है, वहां धर्म कैसे ? धर्म तो व्यक्तिकी सत् प्रवृत्ति पर ही निर्भर रहता है। अतएव धर्म और राजनीति दो अलग अलग वस्तुएँ हैं। बहुधा इनका सम्मिश्रण ही आजके दुःखद वातावरणका हेतु बन रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भारतवर्षमें सर्वत्र दिखाई दे रहा है। बंगाल, बिहार एवं पंजाबके हत्याकांड इसीके परिणाम हैं। अब भी समझनेकी आवश्यकता है। राजनीति एवं धर्मके कार्य क्षेत्रका पृथक्ताका बोध होना जरूरी है। अन्यथा धर्मके प्रति घृणा हुए बिना नहीं रहेगी। चूंकि राजनीतिमें स्वार्थके संघर्ष होते रहते हैं और धर्म केवल निःस्वार्थ साधनाकी वस्तु है। स्वार्थी पुरुष राजनीतिमें उसका ऐसा दुरुपयोग कर बैठते हैं कि वैसी हालतमें धर्मके प्रति अरुचि हो जाय तो वह अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। यदि भारतवासी क्षमा, सहिष्णुता और शान्तिकी प्रतीक अहिंसाको न भूलें तो भारतवर्ष पूर्ण शान्ति एवं वास्तविक स्वराज्यका अनुभव कर सकता है।

मैं विश्वास करता हूं कि यदि विचारकगण इस सिद्धान्तकी समीक्षा करेंगे तो अवश्य ही उन्हें इसमें समताका बीज मिलेगा। धर्मके नाम पर आज जो अशान्ति—कलह फैला हुआ है, उसे रोकनेके लिए यह [illegible] अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा

धर्मकी मीमांसा

दुनियांमें बहुतसे ऐसे व्यक्ति हैं, जो धर्मकी यतई आवश्यकता नहीं समझते। प्रत्युत उसे तीव्र तिरस्कारकी दृष्टिसे देख रहे हैं। जबकि वास्तवमें धर्म सदा और सब कामोंमें अत्यन्त आदर पूर्वक अपेक्षा करने योग्य है। और कई ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो धर्म शब्दके वैज्ञानिक अर्थ और परिभाषाका ठीक ठीक निर्णय करनेमें असमर्थ हैं। वे 'धर्म सर्गा निसर्गवत्' इस कोष-वाक्यकी दुहाई देकर वस्तु स्वभावको ही धर्म मान रहे हैं। उष्णता अग्निका धर्म है, ठण्डक पानी का धर्म है, रोटी खाना भूखे का धर्म है, पानी पीना प्यासे का धर्म है, चोरी करना चोर का धर्म है, मांस खाना मांसहारीका धर्म है। इस प्रकार स्वभाववाची धर्म शब्दको आत्म-साधनाकी श्रेणीमें रख कर धर्मकी विडम्बना कर रहे हैं।

कई मनुष्य जो जिसका कर्त्तव्य है वही उसका धर्म है, कर्त्तव्यसे पृथक् कोई भी धर्म नहीं है, इसके आधार पर यों कहते हैं कि जिस व्यक्तिका, जिस जातिका और जिस संस्था का जो कर्त्तव्य है, उन्हें वही करते रहना चाहिए। अपने कर्त्तव्यसे च्युत होनेवाले मनुष्य धर्म भ्रष्ट हो जाते हैं। क्या वे ऐसा कहनेवाले शोषण, कलह एवं युद्ध आदिको प्रोत्साहन देते हुए धर्मकी अवहेलना नहीं कर रहे हैं? कई लोग जैसे तैसे तृप्ति पहुंचानेके साधनको ही धर्म मान रहे हैं—सिर्फ ऐहिक सुख शांति की अभिसिद्धिके लिए ही जी जानसे यत्न कर रहे हैं। आवश्य-

क्ताके उपरान्त धन धान्यका संग्रह करनेमें जुट गए हैं। केवल स्वार्थ सिद्धिके लिये दूसरोंके कष्टोंकी उपेक्षा करते हुए धर्म शब्दको कितना दूषित बना रहे हैं? परन्तु सच तो यह है कि शान्तिके लिये किसी दूसरेको कष्ट पहुंचाना धर्म नहीं हो सकता। धर्मके नाम पर बड़े बड़े धर्मालय हिंसाके केन्द्र बन रहे हैं। विविध वेशभूषासे सुसज्जित स्वार्थपोषक धर्म-ध्वजियोंकी कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार धर्मकी विडम्बना होते देखकर कौन धार्मिक व्यक्ति खेद खिन्न नहीं होता और किसको धर्मके नामसे ग्लानि नहीं होती? इस विषय पर इस छोटेसे निबन्धकी थोड़ीसी पंक्तियोंमें कितना लिखूं? पर पण्डितजन अल्पमें ही अनल्प भावको ताड़ सकेंगे। यद्यपि स्वभाव धर्मका नाम हो सकता है तथापि आत्मविकासके लिये हमें जिस धर्मकी आवश्यकता है, वह धर्म वही है जो आत्माके स्वभाव—ज्ञान, दर्शन आदि आत्म गुणोंको प्रकट करनेवाला हो, न कि किसी वस्तुका जो कोई स्वभाव है, वही धर्म है। कर्त्तव्य धर्म है, यह भी हम कह सकते हैं, पर वह कर्त्तव्य आत्मविकासका साधन होना चाहिए। जो कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जातिके भौतिक स्वार्थोंसे सम्बन्धित है और प्रत्येक परिस्थितिमें परिवर्तनशील है, वह धर्म नहीं। स्पष्ट शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि जो धर्म है, वह कर्त्तव्य है, और जो कर्त्तव्य है, वह धर्म है भी और नहीं भी।

जो शान्तिका साधन है, वह धर्म है, यह भी ठीक है। पर पारमार्थिक शान्तिका साधन ही धर्म है। शान्ति मात्रका साधन

धर्म नहीं हो सक्ता।

भगवान महावीर की वाणी म धर्म की परिभाषा इस प्रकार है —

*"धम्मो मगल मुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।
देवावि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो॥"

अहिंसा-सयम तपस्या रूप जो आध्यात्मिक विकासका साधन है, वही धर्म है। इन तीनो (अहिंसा, सयम, तपस्या) से अलग कोइ भी काय धर्मकी परिधिम नहीं समा सक्ता।

अहिंसा क्या है ?

हिंसाकी विरतिका नाम अहिंसा है। मनसे, वाणीसे, शरीरसे, कृत कारित अनुमतिसे, त्रस स्थावर, इन दोनो प्रकारके प्राणियोका निनकी असत् प्रवृत्तिके द्वारा प्राणवियोग करनेका नाम हिंसा है। वह चार प्रकारकी है —

१—निरपराध जीवोंकी किसी प्रयोजनके बिना सकल्पपूर्वक जो हिंसाकी जाती है, वह सकल्पजा हिंसा है।

२—अपना या पराया मतलब साधनेके लिए जो प्राण वध किया जाता है, वह स्वार्थ हिंसा है।

३—कृषि, वाणिज्य आदि गृहसम्बन्धी कार्योंम जो आवश्यक हिंसा होती है, वह अनिवार्य हिंसा है।

४—अपना असावधानीसे जो हिंसा होती है, वह प्रमाद-हिंसा है।

* दश० अ० १ गा० १

मन, वाणी और शरीरसे कृत-कारित अनुमतिसे चारों प्रकार की हिंसाका त्याग करनेसे ही पूर्ण अहिंसा हो सकती है, अन्यथा नहीं। यद्यपि गृहस्थोंके लिए पूर्ण हिंसाको त्यागना असंभव है, तो भी कम-से-कम संकल्पजा हिंसाका परित्याग तो अवश्य ही करना चाहिए। क्योंकि जितने पारस्परिक संघर्ष और साम्प्रदायिक कलह होते हैं, वे प्रायः संकल्पी हिंसासे ही पैदा होते हैं। संकल्पी हिंसा ही प्रतिशोधकी भावनाको जन्म देती है। उसको सफल बनानेके लिए पग-पग पर विरोधियोंका छिद्रान्वेषण करना जरूरी बन जाता है। उससे आत्मवृत्तियाँ मलिन बनती हैं और धर्म-ध्यान सारी गतिविधि पतनकी ओर मुड़ जाती है। अतएव धार्मिक गृहवासियोंके लिए संकल्पी हिंसाका परित्याग भी नितान्त आवश्यक है। जैसे—

पढमं अणुव्वयं-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं तसजीव बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय-पंचिंदिय संकप्पओ हणण-हणावण पच्चक्खाणं" इत्यादि।

(पहिले अहिंसा अणुव्रतमें स्थूल प्राणातिपातसे विरत होता है, त्रस जीव—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवोंको संकल्पपूर्वक मारने-मरवानेका प्रत्याख्यान करता है।)

हिंसा और अहिंसाके प्रति धार्मिक दृष्टिकोण यह है कि जो संकल्पी हिंसाका त्याग है, वही धर्म है और जो शेष हिंसाओंका आचरण है, वह धर्म नहीं है। यदि अनिवार्य हिंसाको अधर्म माना जाय तो फिर निर्बाध रूपसे दुनियांका व्यवहार कैसे चल

सकेगा, ऐसी शंका करना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि "पूर्ण अहिंसा से दुनियाका काम नहीं चल सकता"—ऐसा कहनेवालोंको यह जवाब है कि इसीलिए तो जगह २ स्वार्थ हिंसा और अनिवार्य हिंसा होती है। पर इसका मतलब यह नहीं कि सांसारिक कार्योंको निभानेके लिए की जानेवाली हिंसा अहिंसा हो जाय। यह तीन कालमें भी नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि इन हिंसाओंके लिए गृहस्थ अपनेको विवश माने और अनिवार्य हिंसाके प्रति अपने दिलमें खेद करता रहे अर्थात् उसमें लिप्त न हो, अनासक्तकी भांति रहे। यदि अहिंसाके इस सिद्धान्तको आंशिक रूपसे भी अपना लिया जाय तो विश्व मैत्रीके प्रसारमें बहुत सहायता मिल सकती है।

संयम क्या है ?

संयमका अर्थ है आत्मवृत्तियोंको रोकना। संयम आत्म-साधनाके आध्यात्मिक मार्गमें जितना आवश्यक और कल्याण-कारी है, उतना समाजनीति एवं राजनीतिमें भी है। फिर भी परमार्थदृष्टिसे जैसा संयम साधा जा सकता है वैसा अन्य किसी भी उपायसे नहीं।

जीवनकी आवश्यकताएं संयमकी उतनी बाधक नहीं, जितनी भोग और ऐश्वर्यकी आकांक्षाएं हैं। जबतक लोग धनकुबेरोंको 'महान्' मानेंगे तबतक जगत्‌की स्थिति निरापद नहीं हो सकेगी। आजसे हजारों वर्ष पहले लोग धनियोंकी अपेक्षा संयमी पुरुषोंको

अधिक महान् मानते थे। यही तो कारण है कि उस समयके धनिक अभिमान और स्वार्थकी पराकाष्ठा तक नहीं पहुच पाते थे और न जनसाधारणको अपनेसे तुच्छ या पददलित ही मानते थे। सबके दिलोंमें आपसमें भ्रातृत्वपूर्ण सम्मान था। परन्तु आजकी समूची परिपाटी ठीक उससे विपरीत है। अतएव आज साधारण लोग श्रेणी वर्गका अन्त करनेको तुले हुए हैं। जगह २ धनिक और निर्धनके बीच सघर्ष हो रहे हैं। इस स्थितिमें भी धनी एव निर्धन इन दोनोंमेंसे एक भी धनकी लालसा छोड़नेको तैयार नहीं है। "धनी ही महान् है—अर्थात् धन ही बड़प्पनका मान दण्ड है" यह दोष सब जगह देखा जा रहा है। "सयमी पुरुष ही महान् है" इस बातको जबतक लोग नहीं समझ लेंगे, तबतक लालसाको कम करनेका सिद्धान्त लोक दृष्टिमें उपादेय नहीं हो सकेगा। और जबतक लालसा कम न होगी, तबतक आवश्यकतायें बढ़ती रहेंगी। आवश्यकताकी वृद्धिमें सुखकी कमी रहेगी। क्योंकि अधिक आवश्यकतावाले व्यक्ति समाज या राष्ट्र पर आत्मनिर्भर नहीं हो सकते और आत्म निर्भर हुए बिना दूसरेकी अपेक्षा रखना नहीं छूट सकता। जबतक दूसरोंकी अपेक्षा रहती है, तबतक शोषण और दमन हुए बिना नहीं रह सकते और इन दोनों (शोषण और दमन) में सबके सब 'वाद' यानी सिद्धान्त अपना अस्तित्व खो बैठते हैं—मिट जाते हैं। इसलिये अपने और पराये कल्याणकी कामना करनेवाले व्यक्तियोंको सबसे पहले सयमका अभ्यास करना चाहिए। उसमें

धार्मिक पुरुषको एक विशेष ख्याल रखना चाहिये कि वह सयम धर्म ऐहिक फल-प्राप्तिकी भावनासे न पाले अथात् उसके द्वारा पुण्य, स्वर्ग एव भौतिक सुख पानेकी अभिलाषा न रक्खे। सं एक वास्तविक शान्तिका साधन है। इसीलिये सब लोगोंको धर्म के द्वारा केवल लौकिक प्रयोजन साधनेकी भावनाको कतई त्याग देना चाहिए।

तपस्या क्या है ?

राग द्वेष प्रमाद स्वार्थ रहित जितने आचरण है, वह सब तपस्या है। उपवास, प्रायश्चित्त, विनय, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान आदि आदि तपस्याके अनेक भेद है। जिनका जीवन तपस्यासे ओतप्रोत है, वही मानव महात्मा एव परोपकारी हो सकते है अपनी खुदकी आत्माकी शुद्धि किए बिना कोई भी मनुष्य दूसरे का उपकार नहीं कर सकता। तपस्यामय जीवन स्वभावसे ही सन्तुष्ट होता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको अपना जीवन तपस्या से ओत प्रोत कर डालना चाहिए। अन्यथा सिर्फ किस किस सिद्धान्तकी छाप लगने मात्रसे कोई भी मनुष्य धार्मिक नहीं बन सकता। धर्म किसी वाद विवादमें नहीं रहता। जिनके हृदय तपस्यासे प्लावित हैं वहीं उसका स्थान हैं। भगवान् महावीरकी वाणीमें यही अहिंसा सयम तपस्या रूप धर्म है और यही प्रत्येक आत्माको पूर्ण स्वतन्त्र एव सुखी बनानेवाला है। अस्तु, मैं समझता हूँ—पूर्व पक्तियोंके चुने हुए परिणामो पर एक सरसरी निगाह डालनी उचित होगी। जैसे —

१ जीवनके पूर्वार्द्धमें ही धर्माचरण शुरू कर देना चाहिए।

२ धर्म जीवनकी उन्नतिमें बाधा डालनेवाला नहीं

३ सत्य धर्मके प्रचारार्थ किये जानेवाले निरवद्य प्रयत्न सर्वत्र प्रशंसनीय हैं।

४ धर्मकी असलियतमें कभी भी अनेकता नहीं हो सकती।

५ धर्मके नाम पर कहीं भी संघर्ष नहीं होना चाहिये।

६ धर्म उपदेशग्राह्य है, वह बलपूर्वक नहीं कराया जा सकता।

७ धर्म अन्यायको नहीं सह सकता, वैसे ही राजनीति भी। पर इन दोनोंमें अन्तर यही है कि धर्म अन्यायको हृदयकी शुद्धिसे निवृत्त करता है और राजनीतिमें सभी सम्भव उपायोंका प्रयोग करना उचित माना गया है अतः धर्म और राजनीति दो पृथक् वस्तुएं हैं।

८ "आप इसे मार रहे हैं, यह नहीं हो सकता, या तो आप इसे न मारें अन्यथा इससे पहले मुझे मार डालें"—इस प्रकार किसीको विवश करना सांसारिक उदारता भले ही हो पर विशुद्ध अहिंसा नहीं कही जा सकती।

९ वस्तुका स्वभाव ही धर्म नहीं है।

१० समस्त कर्त्तव्य ही धर्म नहीं—धर्म तो कर्त्तव्य है ही

११ शान्तिके साधन मात्र ही धर्म नहीं, किन्तु आत्म शान्ति के साधन ही धर्म हैं।

१२ धर्मके लक्षण, अहिंसा, संयम और तपस्या हैं।

१३ अनिवार्य हिंसा भी हिंसा है।

१४ सङ्कल्पजा हिंसा अशान्तिका प्रमुख कारण है।

१५ अहिंसा आत्माके असली स्वरूपको पानेके लिए है।

१६ अनिवार्य हिंसामें भी अनुरक्त नहीं होना चाहिए।

१७ धर्म त्यागप्रधान है।

१८ 'महान्' संयमी पुरुषको ही मानना चाहिए, असंयमीको नहीं।

१९ आवश्यकताओंकी कमी करनी चाहिए।

२० धर्म निःस्पृह भावनासे करना चाहिए, बदला पाने, याने ऐहिक प्रतिफल पानेकी भावनासे नहीं।

२१ उपदेशकोंको पहले अपनी आत्माकी शुद्धि कर लेनी चाहिए।

अन्तमें मेरी यह मंगल कामना है कि सब लोग धर्मकी वास्तविकताको पहचानें। उसका अनुशीलन करें और सुखी बनें।

धर्म-रहस्य

[दिल्लीमें एशियाई कॉफरेंस के अवसर पर भारत कोकिला सरोजिनी देवी नायडूकी अध्यक्षतामें २१ मार्च सन् १९४७ को आयोजित 'विश्व धर्म सम्मेलन' के अवसर पर]

धर्म रहस्य

विश्व-धर्म-सम्मेलनमें सम्मिलित सज्जन इस मेरे धर्म विषयक सदेश पर गौर करें। इसमें अन्तर्निहित रहस्यको विचारें, यही मेरा संदेश या विशेष अनुरोध है। जिस धर्मकी रक्षा और वृद्धिके लिए प्रतिवर्ष अनेकों सम्मेलन सम्पन्न होते हैं, जिसके लिए महिमाशाली सत लोग प्रतिक्षण प्रयत्न करते हैं, जगन्मान्य उदार कवि जिसके गुणगौरवकी गाथा गाते हैं, वही धर्म सबका रक्षक है और सब मगलोंमें प्रमुख मगल है। जैसे "धम्मो मगल मुक्किट्ठ" अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मगल है।

प्रत्येक प्राणीके हृदय प्रागणमें धर्मका प्रसार करनेके लिए अध्यात्म शिरोमणि विद्वन्मान्य महात्माओं ने स्वनामधन्य पवित्र जन्म धारण किया था। स्वभावसे सन्तुष्ट और परोपकार-रसिक उन महात्माओंने अपनी विपद् वाणीसे उपदेश किया था। जैसे—

१—"सब प्रकारसे सब जीवोंको न मारनका वृत्तिका नाम अहिंसा है।"

१— सव जावेष्वजिघासुवतिरहिंसा'

करने सुख-दुखका निर्माण और नाश करती
करने वाली आत्मा ही अपना मित्र है और
होनेवाली आत्मा ही अपना शत्रु है।"

३—"प्राणी मात्रकी हिंसा नहीं करनी चाहिए।"

४—"सब जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं।"

५—"मेरी सब प्राणियोंके साथ मैत्री है, किसीके साथ मेरा वैर विरोध नहीं है।"

६—"सब सुखी बन"

७—"समूचा ससार ही मेरा कुटुम्ब है।"

८—"सब प्राणियों पर अपने जैसा व्यवहार करना चाहिए।"

९—"आत्मदमन करनेवाला सुखी होता है।"

१०—"मेरे लिए यह उचित है कि मैं सयम, त्याग और तपके द्वारा आत्मदमन करू। यह मेरे लिए अनुचित है कि बन्धन और वध द्वारा मैं दमन किया जाऊ।"

इत्यादि इस उपदेश वाणीको फूलोंकी तरह सिर पर धारणकर असख्य भद्र मनुष्योंने अपने जीवनको उन्नत बनाया था। इस

२—अप्पा कत्ता विकत्ताय, सुहाणय दुहाणय। अप्पामित्तममित्त च दुप्पठिय सुप्पठिय ३—सव्वे पाणा महतव्वा ४—सव्वे जीवावि इच्छति जीविउ न मरिज्जिउ ५—मित्ति मे सव्व भूएसु वैर मज्झ न केणइ ६—सर्वे भवन्तु सुखिन ७—वसुधव कुटुम्बकम् ८—आत्मवत सर्व भूतेषु ९—अप्पादन्तो सुही होइ

१०—वर मे अप्पा दन्तो सयमेण तवेण य माह परेहिदम्मन्तो बधणेहि वहेहिय।

जानेवाले स्वार्थ पोषणसे है। वर्तमानमें धर्म और धर्मके अनुगामी विरले है। अधिकतर दाम्भिक पुरुष ही धर्मकी विडम्बना कर रहे है। उनके कथनानुसार वे ही धर्मके नेता हैं। उनके स्वार्थपूर्ण आचरणको निहार कर कौन मनुष्य धर्मको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखता ? इत्यादि इन बातोंके सूक्ष्म पर्यवेक्षणसे मेरा अधिकतर खिन्न मानस भी सत्य धर्मके प्रचारार्थ एव असत्य धर्मके निवारणार्थ सम्पन्न होनेवाले इस सर्वधर्म-सम्मेलनको इसके उद्देश्योंके अन्तर्गत प्रयत्नोंको देखकर और आलोचनात्मक अध्ययन कर परम शान्तिका अनुभव कर रहा है। यह समय इस कार्यके लिए उचित है। जबकि विश्वव्यापी महाप्रलयकारी युद्ध और उससे उत्पन्न भाँति भाँतिकी विकट-विकटतम समस्याओंको लाघ कर सुखपूर्वक जीनेका इच्छुक समूचा ससार किसी शांतिके रहस्यको सुनने, उसके पीछे २ चलनेको उत्सुक है। इसलिए अब एक तूफानी क्रान्ति उठानी चाहिये। एक प्रबल आन्दोलन छेडना चाहिये। जिससे इस नवयुगके आरम्भमें सत्यधर्मका स्रोत निकल पड़े और उस पर लोगों की रुचि बढ़े। मैं प्रस्तुत अधिवेशनमें उपस्थित सब सज्जनोंको जैन दर्शनसे अनुप्राणित सर्वोपयोगी धार्मिक रहस्यका दिग्दर्शन कराना चाहता हूं और आशा करता हूं कि उपस्थित सज्जन सावधानी से उसका मनन करेंगे और उसको कार्यरूपमें परिणत करेंगे।

धर्मकी परिभाषा

सर्व प्रथम धर्मकी परिभाषाका निश्चय करना चाहिये। इस पर जैन-दर्शनकी सम्मति निम्न प्रकार है।

आत्म शोधन, आत्म-स्वातन्त्र्य एवं आत्म-प्रगतिके साधनका नाम धर्म है। यह दो प्रकारका है। निवृत्तिरूप और विधेय प्रवृत्तिरूप। जितना जितना आत्म-संयम है, असद् आचरणोंका परित्याग है, वह निवृत्ति है। राग-द्वेष प्रमाद आदि रहित आचरण स्वाध्याय, ध्यान, उपवास, सेवा विनय आदि आदि कार्य विधेय प्रवृत्ति है। इनके अतिरिक्त जितने आचरण हैं वह धर्म नहीं किन्तु लौकिक प्रवृत्ति अथवा जगत्का व्यवहार है। मोक्ष आत्म विकासका चरम उत्कर्ष—एवं सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है। उसकी प्राप्तिके लिए प्रति पल प्रयत्नशील रहना चाहिए। जन-साधारणमें जो भौतिक अभिसिद्धियोंकी प्रतिस्पर्धा चल रही है, महत्वाकांक्षा वही अशान्तिकारक है। चूंकि ज्यों ज्यों भौतिक विकास पराकाष्ठा पर पहुंच रहा है त्यों-त्यों उसके लिए लोगोंकी लालसाएं भी चरम सीमा पर पहुंच रही हैं। जहां लालसा है वहां दुःख निश्चित है। आध्यात्मिक विकासके लिए प्रयत्न करने पर भौतिक सिद्धियां अपने आप मिल जाती हैं। आत्म विकास का समर्थ साधन धर्म ही है।

राग, द्वेष और बलात्कारसे धर्मका विरोध

जहां आसक्ति है, अमैत्री है वहां धर्म नहीं। आसक्ति और द्वेष संसार वृद्धिके हेतु हैं। उनके साथ धर्मका सम्बन्ध कैसे हो सकता है। जहां आसक्तिके फलस्वरूप बलवानोंका पोषण और अमैत्रीके फलस्वरूप दुर्बलोंका शोषण होता है, वहां यदि धर्म माना जाय तो फिर अधर्मकी क्या परिभाषा होगी और किस

प्रकार अधर्मका अस्तित्व जाना जायगा ? धर्मके लिए जबरदस्ती नहीं की जा सकती। धर्म बलात्कारसे नहीं मनवाया जा सकता और न करवाया जा सकता है। धर्म, उपदेश, शिक्षा और मध्यस्थता—आसक्ति और द्वेष रहितकी अपेक्षा रखनेवाला है। यह कहीं भी बलपूर्वक, प्रलोभनपूर्वक प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं रखता। यदि बलपूर्वक प्रवृत्तिसे भी धर्म हो जाय तो फिर राजनीति ही धर्मनीति हो जायगी। क्योंकि राजनीतिमें बल प्रयोग अवश्यम्भावी है। राजनीति और धर्मनीतिमें यही प्रधान भेद देखा गया है। अतएव इन दोनोंका एक ही कारण आज तक न तो हुआ है, न देखा है, न सुना है।

लौकिक कार्य और धर्म दो हैं

जन-साधारणके निर्णयानुसार उनका जो कर्तव्य है, वही धर्म है। उनकी दृष्टिमें धर्म कर्तव्यसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है, उनका यह निर्णय ठीक है, यह कहनेको हम असमर्थ हैं। चूंकि धर्म लौकिक कर्तव्यसे भिन्न देखा जा रहा है। मानववर्ग अपनी अपनी सुविधाओंके लिए जिस आचरणको कर्तव्यरूपसे मान लेते हैं; वह लौकिक कर्तव्य कहा जाता है और वह पग पग पर परिवर्तित होता रहता है। जो एक समय कर्तव्य है वह दूसरे समय अकर्तव्य हो जाता है। इसी प्रकार अकर्तव्य से कर्तव्य। जैसे एक वह युग था जबकि कठिन से कठिन परिस्थिति आ जाने पर भी राज विरोध करना अकर्तव्य माना जाता था और आज साधारण स्थितिमें भी कर्तव्य माना जा रहा है। धर्म अपरि-

वर्तनशील है। उसका स्वरूप सर्वदा अटल है। एक ही कालमें एक ही कार्यको एक व्यक्ति अकर्तव्य मानता है और दूसरा कर्तव्य। अतएव कर्तव्य सर्वसाधारण नहीं, अपितु धर्म सर्व-साधारण है। सबके लिए समान। ऐसे कारणोंसे यह जाना जाता है—धर्म और कर्तव्य दो हैं, भिन्न-भिन्न हैं। धर्मकी गति आत्म विकासकी ओर है जबकि लौकिक कर्तव्यका तांता संसारसे जुड़ा हुआ है। इस तथ्यको बालक, बुड्ढे सब जानते हैं। इस जगह यह आशंका नहीं करनी चाहिए कि लौकिक कार्योंमें धर्म माने बिना उनमें लोगोंकी प्रवृत्ति कैसे होगी। वह प्रवृत्ति सहज है। जैसे खेती, व्यापार, विवाह आदि लौकिक कार्योंमें होती है। सिर्फ लौकिक कार्योंको प्रोत्साहित करनेके लिए उनमें धर्म कहना दम्भचर्या नहीं, यह हम कैसे कह सकते हैं ?

धार्मिक नियम

जैन वाङ्मयमें पूर्व कथित निवृत्ति और निरवद्य प्रवृत्तिरूप धर्मके १३ नियम बतलाये हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) अहिंसा—त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके प्राणियोंका अपनी असत् प्रवृत्तिके द्वारा प्राण वियोग करना हिंसा है, अथवा जितनी असत् प्रवृत्ति, आसक्ति एवम् अमैत्रीपूर्ण आचरण है, वह सब हिंसा है। हिंसाका विपरीत तत्त्व अहिंसा है। सब प्रकारसे सब जीवोंको न मारना अहिंसा है। विश्व मैत्री अहिंसा है।

(२) सत्य—असत्य वाणी, असत्य मन, असत्य चेष्टाओंका त्याग करना। वह सत्य भी असत्य है जो दूसरोंके दिलको चोट पहुंचाये।

(३) अचौर्य। (४) ब्रह्मचर्य। (५) अपरिग्रह।

(६) ईर्या समिति। (७) भाषा समिति।

(८) एषणा समिति। (९) आदानसमिति।

(१०) उच्चारप्रविष्ठापनसमिति। (११) मनो गुप्ति।

(१२) वाग् गुप्ति। (१३) शरीर गुप्ति।

गृहत्यागी मुनि इन तेरह नियमोंका पूर्णरूपेण पालन करते हैं।

गृहस्थ और धर्म

गृहवासी मनुष्य इन उपरोक्त १३ नियमोंकी पूर्ण रूपसे आराधना नहीं कर सकते। इसलिये व इनको यथाशक्ति पालते हैं। जैसे—(१) स्थूल प्राणातिपात विरमण, (२) स्थूल मृषावाद विरमण, (३) स्थूल चौर्य निवृत्ति, (४) स्थूल मैथुन निवृत्ति, (५) परिग्रह परिमाण आदि आदि।

धर्म अवनतिका कारण नहीं।

धर्म जनताको अवनतिकी ओर ले जानेवाला नहीं। धर्मसे मनुष्य कायर बनते हैं, भीरु बनते हैं, अहिंसा धर्मने वीरवृत्तिका सर्वनाश कर डाला, यह निरा भ्रम है। चूंकि अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है। अहिंसा वीरत्वकी जननी है। कायर पुरुषोंके लिए

अहिंसाका द्वार बन्द है। भगवान् महावीर आदि अहिंसाके साकार अवतार इस रत्नगर्भा भूमि पर अवतरित हुए थे। उनके अनुगामी अनेक मुनि अहिंसारत हुवे और अब भी हैं। महात्मा गांधी प्रमुख राष्ट्रीय नेता तो अहिंसाके अग्रणी मुख्यामें जैन मुनियोंकी तरह बंगाल आदि प्रदेशोंमें लोगोंके पारस्परिक विद्वेष को शान्त करनेके लिए पाद विहारसे विहर रहे हैं। क्या यह कोई कह सकता है कि वे सब कायर हैं भार हैं? अतएव उपरोक्त धारणा भ्रममूलक है। यद्यपि मुमुक्षु जन आत्म विकासके निमित्त ही धर्म किया करते हैं तथापि उनके द्वारा समाज और राष्ट्रकी उन्नति निश्चित होती है। उदाहरणस्वरूप कोई मनुष्य अहिंसा धर्मको स्वीकार करता है, वह विश्व मैत्री है।

मैत्रीसे पारस्परिक कलहका अन्त हो जाता है। यह निःसंदेह है इस पर कोई दो मत नहीं हो सकते। सत्यव्रतसे लोग विश्वस्त बनते हैं, आपसमें प्रेम बढ़ता है। जिस देश, राष्ट्र और समाज जितने अधिक सत्यवादी होते हैं, वह उतना ही अधिक प्रतिष्ठित और उन्नत बनता है। अपरिग्रह व्रतसे अपना मन सन्तुष्ट और दूसरोंके साथ होनेवाला परिग्रहकी स्पर्धा, ईर्ष्या, बराबरीकी भावनाका अन्त होता है। आवश्यकताके उपरांत यदि अर्थ संचय न किया जाय तो दूसरोंकी आवश्यकताए अपने आप पूरी हो सकती हैं। निर्धनता और अति धनिकता—असाधारण विषमताका अन्त हो सकता है। निर्धन और धनिकोंके संघर्ष, जीवाद और समाजवादके कलहका लोप हो सकता है।

दूसरे दूसरे पूंजीवादके विरोधवादोंकी पूंजीसे घृणा नहीं, पूंजीवादके कार्योंसे घृणा है। दूसरे शास्त्रोंमें धनसे घृणा नहीं, धनके अपव्ययसे घृणा है। अपरिग्रहव्रतके अनुसार पूंजीसे ही घृणा होनी चाहिए। क्योंकि अर्थ सब जगह अनर्थमूलक सिद्ध हुआ और हो रहा है। पूंजीवादके विरोधीवादोंका जन्म, रोटी कपड़ेकी कठिनाइयोंके अन्तरकालमें हुआ है। अपरिग्रहवादका उपदेश भगवान् महावीरने तब दिया था जबकि भारत पूर्ण समृद्ध, उन्नत और दूसरोंका गुरु था और जब एक वर्षमें एक विशाल कुटम्बके लिए सैंकड़ो रुपयोंका खर्च भी काफी सरंजाम था। जीवनके आवश्यक पदार्थोंकी असम्भावित सुलभता थी। देखा जाता है, अनुमान किया जाता है, यह सत्य है कि पूंजीवादके विरोधी-वाद उन सत्ताके अधिकारी बनकर स्वयं पूंजीवादकी ओर झुक जाते हैं। पर अपरिग्रहवादका उद्देश्य अथसे इति तक एक है। प्रत्येक दशामें तृष्णाका—अर्थसंग्रहका संकोच करनेका है। दूसरे वादोंमें कुछ न कुछ स्पर्धा और स्वार्थके भाव हो सकते हैं, होते हैं। पर अपरिग्रहव्रतका बीज एक मात्र आत्मशोधन है। अतएव यह निश्चित घोषणाकी जा सकती है कि अपरिग्रहवादके लक्ष्यको अपनाये बिना—अटल रख बिना चाहे कोई भी वाद हो, वह जनसाधारणको सुखी नहीं बना सकता न अपने आप को। इसी तरह अन्यान्य व्रतोंमें भी ऐहिक लाभ भरा पड़ा है। धार्मिक नियमोंका आचरण करना कठिन है, असम्भव नहीं। उनका आचरण करनेसे तो लाभ निश्चित है, अवश्यम्भावी है। यह

परम धर्मकी उपासना आवश्यक है। वह लोग धर्मको केवल धर्म स्थानका वस्तु समझ रहे हैं, यह उनकी भयंकर भूल है। धर्म सब जगह सदा एवं सब कार्योंमें उपासनीय है। अधर्म सब जगह त्याज्य है। गृहस्थ सम्बन्धी कार्योंमें गृहस्थ मोह परतन्त्र एवं आवश्यकताकी पूर्तिके लिए प्रवृत्त होते हैं। वह उनकी असमर्थता है, धर्म नहीं। उन्हें हर समय यों सोचना चाहिए कि वह पुरुष धन्य है जो प्रति क्षण धर्मका आराधना कर रहे हैं। प्रत्येक कालमें दैनिक आचरणमें धर्मका आदर करना चाहिए। धर्मका जितना अधिक आदर किया जायगा, उतना ही अधिक दुनियाका कल्याण होगा।

धर्म और सम्प्रदाय

आत्म विकासका हेतु धर्म है वह एक है। उसके साम्प्रदायिक रूपमें जो भेद हैं, भिन्न २ शाखाएं हैं, जैसे जैन धर्म बौद्ध धर्म क्रिश्चियन धर्म, वैदिक धर्म, इस्लाम धर्म, यह सब धर्मोंका निरूपण करनेवाले महात्माओंकी अपेक्षासे है। इन सबमें अहिंसा प्रमुख आत्मा विशेषताएं हैं, इन्हें सूक्ष्म विवेचन एवं सम्यक् आलोचनापूर्वक हमें विना किसी पक्षपातके अपनाना चाहिए, आदर करना चाहिए। धर्मके अन्दर विरोध नीति हितकर नहीं हो सकता। इस विषयमें जैनधर्म उदार और सत्य प्रिय है। उसके मन्तव्यानुसार जैनेतर बौद्ध, क्रिश्चियन, वैदिक, इस्लाम, आदि दर्शनोंकी अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि विज्ञानरूप जितनी

दूसरे दूसरे पूंजीवादके विरोधवादोंकी पूंजीसे घृणा नहीं, पूंजी वादके कार्योंसे घृणा है। दूसरे शब्दोंमें धनसे घृणा नहीं, धनके अपव्ययसे घृणा है। अपरिग्रहव्रतके अनुसार पूंजीसे ही घृणा होनी चाहिए। क्योंकि अर्थ सब जगह अनर्थमूलक सिद्ध हुआ और हो रहा है। पूंजीवादके विरोधीवादोंका जन्म, रोटी कपड़ेकी कठिनाइयोंके अन्तरकालमें हुआ है। अपरिग्रहवादका उपदेश भगवान् महावीरने तब किया था जबकि भारत पूर्ण समृद्ध, उन्नत और दूसरोंका गुरु था और जब एक वयम एक विशाल कुटुम्बके लिए सैकड़ों रुपयोंका खर्च तो काफी सस्ताम था। जीवनके आवश्यक पदार्थोंकी असम्भावित सुलभता थी। देखा जाता है, अनुमान किया जाता है, यह सत्य है कि पूंजीवादके विरोधीवाद उच्च सत्ताके अधिकारी बनकर स्वयं पूंजीवादकी ओर झुक जाते हैं। पर अपरिग्रहवादका उद्देश्य अथसे इति तक एक है। प्रत्येक दशामें तृष्णाका—अर्थसंग्रहका संकोच करना है। दूसरे वादोंमें कुछ न कुछ स्पर्धा और स्वार्थके भाव हो सकते हैं, होते हैं। पर अपरिग्रहव्रतका बीज एक मात्र आत्मशोधन है। अतएव यह निश्चित घोषणाकी जा सकती है कि अपरिगृहवादके रहस्यको अपनाये बिना—अटल किये बिना चाहे कोई भी वाद हो, वह जनसाधारणको सुखी नहीं बना सकता न अपने आप को। इसी तरह अन्यान्य व्रतोंमें भी ऐहिक लाभ भरा पड़ा है। धार्मिक नियमोंका आचरण करना कठिन है, असम्भव नहीं। उनका आचरण करनेसे तो लाभ निश्चित है, अवश्यम्भावी है। पर

रूपमें धर्मकी उपासना आवश्यक है। कई लोग धर्मको केवल धर्म-स्थानकी वस्तु समझ रहे हैं, यह उनकी भयंकर भूल है। धर्म सब जगह सब एवं सब कार्योंमें उपासनीय है। अधर्म सब जगह त्याज्य है। गृहस्थ सम्बन्धी कार्योंमें गृहस्थ मोह परतन्त्र एवं आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए प्रवृत्त होते हैं। यह उनकी असमर्थता है, धर्म नहीं। उन्हें हर समय यों सोचना चाहिए कि वह पुरुष धन्य है जो प्रति क्षण धर्मकी आराधना कर रहे हैं। प्रत्येक कालमें प्रत्येक आचरणमें धर्मका आदर करना चाहिए। धर्मका जितना अधिक आदर किया जायगा, उतना ही अधिक दुनियाका कल्याण होगा।

धर्म और सम्प्रदाय

आत्म विकासका हेतु धर्म है वह एक है। उसके साम्प्रदायिक रूपमें जो भेद हैं, भिन्न २ शाखाएं हैं, जैसे जैन धर्म बौद्ध धर्म क्रिश्चियन धर्म, वैदिक धर्म, इस्लाम धर्म, यह सब धर्मका निरूपण करनेवाले महात्माओंकी अपेक्षासे है। इन सबमें अहिंसा प्रमुख जो जो विशेषताएं हैं, उन्हें सूक्ष्म विवेचन एवं सम्यक् आलोचनापूर्वक हम बिना किसी पक्षपातके अपनाना चाहिए, आदर करना चाहिए। धर्मके अन्दर विरोध जाति हितकर नहीं हो सकता। इस विषयमें जैनधर्म उदार और सत्य प्रिय है। उसके मन्तव्यानुसार जैनतर बौद्ध, क्रिश्चियन, वैदिक, इस्लाम, आदि दर्शनोंका अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि विधानरूप जितनी

भावना है वह सब हृदयग्राही है, अनुमोदनीय है। जो हमारा है वही सत्य नहीं, जो सत्य है वही हमारा है, यही निर्णय पण्डितोंको मान्य होना चाहिए। एक जैन कविने कहा है, "अज्ञानी पुरुषोंमें भी परोपकार, सन्तोष, सत्य, उदारता नम्रता आदि आदि गुण हैं, व आत्म विकासके हेतु हैं, हम उनका अनुमोदन करते हैं।" इस प्रकार सब दार्शनिकोंको विशालता रखनी चाहिए। आपसमें विरोध भावनाओंका पोषण नहीं करना चाहिए। धर्मके नाम पर विरोध फैलानेसे वह लोक-दृष्टिमें हास्यास्पद और घृणाका हेतु बन जाता है। धार्मिक जनोंको धार्मिक गौरवकी रक्षाके अर्थ इस पर हरसमय ध्यान रखना चाहिए।

धर्म और एकीकरण

धार्मिक मतभेदको दूर करनेके लिए अनेकों पण्डित यत्नशील हैं, यह लोकवाणी कहीं कहीं से कानों तक पहुंच रही है। इसके सम्बन्धमें मेरा जैन दर्शनानुसारी विचार निम्न प्रकार है —

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" इस लोकोक्तिको हम सर्वथा असत्य नहीं मानना चाहिए। सब मनुष्योंकी कि विचार शैली, निरूपण पद्धति और मन्तव्यरुचि किसी समय भी एक नहीं हो सकती। यह एक अटल और सर्वमान्य सिद्धान्त है। जबकि सबके विचारोंका एकीकरण होना ही कठिन है, इस दशामें सब धर्मोको किस आधार पर एक करनेकी सम्भावना करनी चाहिए।

यह एक असम्भव सी बात है। तो भी विचारोंकी विषमता
को विचारों तक ही सीमित रखनेके लिए अगत्य, अभाव। द ण
र व्यवहारोंको रोकनेके लिए, प्रत्येक तत्त्वको भिन्न २ दृष्टिकोण
परखनेके लिए, आपसमें एकताकी स्थापनाके लिए एक समन्वय
दृष्टिकोणकी आवश्यकता है। यह जैन-दर्शनमें उपलब्ध है। वह
नयवाद। एकताके अभिलाषियोंको उसका अवश्य अनुसरण
करना चाहिए। उसमें अन्ध-गजन्यायके अनुसार सब धर्मों
में अनेकतामें एकता सिद्ध होती है। सब वाद विवादोंका अन्त
होता है। उससे हमें एक अनूठा सबक मिलता है। जिसप्रकार
शरीरके विविध अवयव भिन्न २ होते हुए भी सम्मिलित
होकर कार्य सम्पादन करते हैं, वैसे ही सब पृथक् २ दर्शनावलम्बी
विरोध भावनाको त्याग कर, एक होकर धर्मकी उन्नति करनेको,
अपनी, पराई और समाजकी भलाई करनेको, उत्थान करनेको
समर्थ हो सकते हैं। अतएव सत्यान्वेषी सज्जनोंको इस नयवाद
का आलोचनात्मक अध्ययन करना चाहिये।

जैन का स्याद्वाद महान् वाद है

स्याद्वाद जैन सिद्धान्तका प्राणभूत, सब विषम जटिल
गुत्थियोंको सुलझानेवाला एक महान सिद्धान्त है। जिससे सब
पदार्थोंकी नित्यता-अनित्यता अस्तित्व नास्तित्व, समता विषमता
सहज सिद्ध हो सकती है। उदाहरणस्वरूप—आत्मा शाश्वत है
या अशाश्वत, इस पर महाप्रज्ञवादी उत्तर अ

पक्षम है और कोइ दार्शनिक उसे एकान्त नित्य मानते है। अपेक्षावादके अनुसार जगत न तो नित्य है और न अनित्य, किन्तु नित्यानित्य है। चूकि पदार्थके रूपसे जगत अनादि और अनन्त है, इसलिये वह शाश्वत है और उसका प्रतिक्षण होनेवाला अवस्थाओंका परिवर्तन दृष्टिके सामने है, अतएव वह अशाश्वत है। यह नियम सब पदार्थों पर लागू होता है। इसीप्रकार अपने अपने रूपसे सब पदार्थोंका अस्तित्व है और दूसरोंके स्वरूपसे नास्तित्व है। समान अशाका कारण एक है और विषम अशाके कारण अनेक हैं। इस प्रकार सप्तभगोसे निरूपणके सात तरीकोंसे सब पदार्थोंके सत्यकी शोध करना चाहिये। अपेक्षा वादका गम्भीर निरूपण करनेके लिए विद्वानोंका एक बलवान यत्न करना जरूरी है।

धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति से है

धर्म व्यक्तिनिष्ठ है, समष्टिगत नहीं। धर्म पर किसी जाति, समाज, राष्ट्र या सघका अधिकार नहीं। वह सबका है, निर्धन का है, धनवान्का है, दुर्बलका है बलवान्का है, वह उसीका है जो उसकी आराधना करता है। प्राणीमात्र धर्मका अधिकारी है। धर्मकी उपासनामें जाति, रङ्ग, देश, स्पृश्य, अस्पृश्य आदि का कोई भी भेदभाव नहीं हो सकता जो पुरुष धर्मको अमुक जाति, अमुक दर्शनके आश्रित मानते हैं, वह दाम्भिक है। धर्म आत्माका गुण है, जो उसे पालता है उसके लिए वह आकाशके समान विशाल और कुबेरके समान उदार है।

धर्म की उपेक्षा

धर्मकी आराधना करनेका सचेष्ट रहना चाहिए। धर्मसे उदासीन रहना अच्छा नहीं। धर्मकी उपेक्षा अपनी उपेक्षा है, धर्मको भुलाना अपने आपको भुलाना है। उसकी उपेक्षा अपनी उपेक्षा है। जो धर्मका ख्याल रखता है, उसका वह भी ख्याल रखता है। "धर्मो रक्षति रक्षितः" यह वाक्य पूर्ण परीक्षाके बाद रचा गया है। वर्तमानमें ऐसे मनुष्य प्रचुर मात्रामें मिलेंगे, जो धर्मसे कतई उदासीन हैं। उनकी धारणामें धर्मनामका कोई तत्त्व है ही नहीं। राजनैतिक दलमें भी एक ऐसे विचारोंका दल है। वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे धर्मके मूल पर कुठाराघात करना चाहता है। इस दिशामें वह लगनके साथ काम कर रहा है। ज्यों त्यों राजसत्ता या और और सम्भावित उपायोंसे धर्मका मूलोच्छेद करनेके बाद ही वह विश्वशांति और राष्ट्र उन्नतिका सपना देख रहा है। पर उनकी विचारशक्ति अपरिपक्व है। क्या वे इतना ही नहीं समझ सकते कि भारत एक धर्म-प्रधान राष्ट्र है। इसकी संस्कृतिका मूल धर्म—अध्यात्मवाद है। सबके हृदयमें अपनी अपनी संस्कृतिका गौरव हुआ करता है। अध्यात्मवादके आधार पर जीनेवाली संस्कृतिका गौरव तो होना ही चाहिये। पर अदीर्घदर्शी मनुष्य अपनी अविचारपूर्ण प्रवृत्तिसे उस सुखद संस्कृतिकी अवहेलना कर अपने पैरों पर कुल्हाडी चला रहे हैं। हा! धर्मके नाम पर

बाह्याडम्बरका अन्त तो अवश्य होना चाहिये। उससे कुछ हानि नहीं—प्रत्युत् लाभ होगा। पर चोरके साथ कोतवालको भी दण्ड देना कहाँका न्याय है? हमारा विचार एवं प्रचार यह होना चाहिये कि धर्मके नाम पर किये जानेवाले अधर्माचरणका अन्त करें। पर ऐसा न कर धर्मके अस्तित्वसे ही घृणा करवाना कहाँ की बुद्धिमता है?

भारतवर्षके नव निर्माणमें धर्म विषयक पूर्ण स्वतन्त्रता आवश्यक होना ही चाहिए। धर्मके अनुगामी यह आशा करते हैं कि धर्माचरणमें राजकीय सत्ताका कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। इसके बारेमें महात्मा गांधी अनेक बार घोषणा कर चुके हैं कि धर्म किसी समय भी राज्य सत्ताका पारतन्त्र्य और हस्तक्षेप नहीं सह सकता। अन्य राष्ट्रीय नेता भी यही आश्वासन * दे रहे हैं कि धर्ममें कोई भी बाधा नहीं डाली जायगी।

---

*[धर्म यदि आत्मीय गुण है तो फिर उसकी रक्षाके लिए राज्याधिकारियोंके आश्वासनकी क्या आवश्यकता? यह एक सर्व साधारण प्रश्न है। पर इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि हमारा धर्म राजनीतिज्ञोंकी कृपा पर निर्भर करता है। हमारा धर्म हमारे पास है उसमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। तथापि हम चाहते हैं कि धार्मिक और राजनैतिक सम्बन्ध सद्भावपूर्ण बने रहें। एक दूसरेके बीच भेदभाव न बढ़े। अतएव हम यह कहनेको बाध्य होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप जैनी साधु अहिंसाको मद्दे नजर रखते

सब धर्म सम्मेलनके उद्देश्यानुसारी प्रयत्न सब दर्शनोंके रहस्य की खोज करना, उनके पारस्परिक मतभेदोंको दूर करना, सत्य धर्मकी रक्षा करना, प्रशंसाके योग्य है। समस्त धार्मिक मनुष्यों का यह मुख्य कर्तव्य है। प्रत्येक धार्मिकको सत्यधर्मकी रक्षा करनेके लिए प्रति क्षण सचेष्ट और जागरूक रहना चाहिए।

जैन दर्शन और तेरापन्थ

भगवान महावीर जैन दर्शनके चौबीसवें प्रवर्तक थे। उनका निर्वाण ईसा के ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। उनके निर्वाणके बाद कई शताब्दियों तक उसका प्रचार बड़े ही समृद्ध रूपमें होता रहा। तत्पश्चात् परिस्थितियोंकी विषमता एवं धर्म गुरुओंकी आचार शिथिलता आदि कारणोंसे विशृङ्खलतामें परिणत हो गया। फल स्वरूप समूचे भारतवर्ष एवं अन्यान्य देशोंमें व्याप्त मैत्रीप्रधान जैनधर्म एक छोटेसे वर्ग तक सीमित रह गया। ऐसी स्थितिमें ई० सन १७६१ में एक जैनाचार्यने इसके उज्ज्वल अतीतकी ओर ध्यान दिया उनका नाम था भिक्षु स्वामी। सत्यान्य और आचरणोंकी शिथिलताको खत्म करनेके लिए एक सक्रिय आन्दोलन छेड़ा। एक भीषण क्रान्ति फैल गई। जैन संघका सगठित

हुए किसी हालतमें भोजन नहीं पका सकते। उनके जीवन निर्वाहका साधन एक मात्र भिक्षा है। उनकी भिक्षावृत्ति किसीके लिए भी बाधास्वरूप नहीं। इस दशामें भिक्षुकोंके साथ २ उनकी भिक्षा पर प्रतिबन्ध लगाना एक अविचारपूर्ण प्रयत्न है।]

करनेके लिये बुद्धिमत्तापूर्ण नियम एवं उपनियम बनाये। सम्पूर्ण संघको एक सूत्रमें सुग्रथित कर भारी समाजके सम्मुख एक नवीन आदर्श उपस्थित किया। प्रचार कार्यके आरम्भमें भिक्षु प्रमुख १३ मुनि थे। साधुवर्गके प्रमुख नियम भी १३ थे। अतएव उक्त संख्याके अनुसार इस भिक्षु प्रचारित जैन संघको लोगोंने 'तेरापंथ' नाम घोषित कर दिया। भिक्षु स्वामीने इस नामका तात्पर्य यों प्रचारित किया। 'हे महावीर प्रभो! यह तुम्हारा पथ है—अहिंसा धर्म है। हम तो उसके अनुगामी हैं।' ऐसा समयसे इस संघका 'तेरापंथ' नाम प्रचलित हुआ। वस्तुतः जैन और तेरापन्थ एक ही है। इस समय उक्त जैन संस्थामें ६४१ साधु और साध्वियां एक आचार्यके अनुशासनको शिरोधार्य कर सत्य धर्मके प्रचारार्थ पादविहारसे विहर रहे हैं। लाखोंकी संख्यामें इसके अनुयायी सद्‌गृहस्थ यथाशक्ति धार्मिक नियमोंका अनुशीलन करते हुए समूचे भारतवर्षमें फैले हुए हैं। विशेष अन्वेषण के लिये सत्यान्वेषक स्वयं उत्सुक होंगे। इस अति संक्षिप्त 'धर्म रहस्य' नामक निबन्धको सुनकर या पढ़कर उपस्थित सज्जन सत्य धर्मके रहस्यका अन्वेषण करेंगे तो मैं मेरे इस प्रयासको सफल समझूंगा। 'विश्व - धर्म - सम्मेलन' संयोजक सत्यान्वेषक समिति भी अपने नामको चरितार्थ कर सकेगी।